तृतीय अध्याय

आत्रेय एवं धन्वन्तरि की परम्परा

जब मर्त्यलोक में आयुर्वेद का प्रसार हुआ, तो आयुर्वेद पहले दो सम्प्रदायों में विभक्त हुआ—एक आत्रेय-सम्प्रदाय, जो कायचिकित्सा प्रधान था और दूसरा धान्वन्तर-सम्प्रदाय, जो शल्यतन्त्र-प्रधान था। इन सम्प्रदायों के आचार्यों ने अपने परवर्ती जिज्ञासु शिष्यों के ज्ञान-संवर्धनार्थ आयुर्वेद के समस्त विषयों को संकलित कर संहिताग्रन्थों का निर्माण किया।

आत्रेय की परम्परा

आत्रेय—गुरु-स्वरूप में प्रथम महर्षि भगवान् आत्रेय है, जो 'अत्रैरपत्यमात्रेयः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अत्रि के पुत्र आत्रेय हैं और जिनका दूसरा नाम पुनर्वसु आत्रेय है तथा कृष्णात्रेय भी है। चरकसंहिता में जो एक भिक्षु आत्रेय नाम भी आया है, वह कोई दूसरे महर्षि है, क्योंकि हिमालय प्रदेश में रोगों के नाश-हेतु विचार करने के लिए जब महर्षियों का सम्मेलन हुआ था, उसमें जितने महर्षि एकत्रित हुए थे, उनमें आत्रेय और भिक्षु आत्रेय दोनों नाम पृथक्-पृथक् आये हुए हैं, इससे यह सिद्ध है कि भिक्षु आत्रेय दूसरे महर्षि हैं। आयुर्वेद-प्रकाश, महर्षियों को उसका बोध एवं महर्षि आत्रेय से उसका सम्बन्ध इन विषयों का वर्णन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है।

इस प्रकार चरकसंहिता नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता महर्षि अग्निवेश के गुरु यही महर्षि आत्रेय है, जिनके उपदेशानुसार ग्रंथ की रचना हुई। इसके अतिरिक्त महर्षि आत्रेय के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि महर्षियों की जब-जब कोई गोष्ठी हुई अथवा सम्मेलन हुआ, वह महर्षि पुनर्वसु-आत्रेय की अध्यक्षता में ही सम्पन्न हुआ और अन्य सम्मेलनों में सम्प्रस्तुत विषय पर विभिन्न महर्षियों की विभिन्न विचार-धारा को सुनकर महर्षि आत्रेय को ही निर्णय देना पड़ा और वह सर्वमान्य रहा।

अग्निवेश—दूसरे महर्षि चरकसंहिता ग्रंथ के तन्त्रकर्त्ता-स्वरूप में अग्निवेश है, जो चरकसंहिता इस तन्त्र के मुख्य तन्त्रकार अर्थात् रचयिता है, इसी से इस ग्रंथ का मुख्य अथवा प्रारम्भिक नाम 'अग्निवेशतन्त्र' है। इनकी बुद्धि बड़ी विशाल थी, इनके साथ ही साथ महर्षि भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत एवं क्षारपाणि ने भी महर्षि आत्रेय से शिक्षा ग्रहण की थी, पर सर्वप्रथम महर्षि अग्निवेश ने ही अपने नाम की संहिता रचित कर पूज्य गुरुदेव महर्षि पुनर्वसु-आत्रेय को सुनाया और जिसे सुनकर

महर्षि ने उस पर पूर्ण प्रसन्नता अभिव्यक्त की। यहाँ पर यह शंका करना निरर्थक है कि गुरुवर आत्रेय ने महर्षि अग्निवेश को कोई विशेष शिक्षा दी थी, जिससे यह प्रथम तन्त्रकर्ता हुए ? यह तो महर्षि अग्निवेश की अपनी विशिष्ट प्रतिभा थी, जिसके फलस्वरूप सर्वप्रथम तन्त्रकर्त्ता वही हुए। तत्पश्चात् अन्य महर्षियों ने तन्त्र रचना कर गुरु को अपने-अपने तन्त्र सुनाये। इन तन्त्रों का जिस समय निर्माण हुआ, उस समय चारों ओर साधु-साधु यह साधुवाद कहा जाने लगा। इतना ही नहीं, अपितु महर्षि चरक ने कहा है—

'शिवो वायुर्ववौ सर्वा भाभिरुन्मीलिता दिशः।
निपेतुः सजलाश्चैव दिव्याः कुसुमवृष्टयः॥
(च० सू० १।३८)

कल्याणकर वायु बहने लगी, सारी दिशाएँ देदीप्यमान हो गईं तथा जल के साथ दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी।

'तानि चानुमतान्येषां तन्त्राणि परमर्षिभिः।
भवाय भूतसङ्घानां प्रतिष्ठां भुवि लेभिरे॥'
(च० सू० १।४०)

सभी श्रेष्ठ महर्षियों ने इन महर्षियों द्वारा निर्मित तन्त्रों को माना और ससार में प्राणिसमूह की स्थिति के लिये तन्त्र प्रतिष्ठा को प्राप्त किये। तात्पर्य यह है कि ये तन्त्र बहुत ही जनोपादेय सिद्ध हुए, किन्तु समय-चक्र के प्रभाव से आज वे सभी विलुप्त हो गये। अच्छे स्वरूप में केवल अग्निवेशतन्त्र ही उपलब्ध हैं, जो चरकसंहिता इस नाम से व्यवहृत है, जैसा कि चरकसंहिता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में कहा भी गया है—

'इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते।'

धन्वन्तरि की परम्परा

नामकरण—भारतवर्ष अपने सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से अति प्राचीनकाल से सुसंस्कृत और सभ्य देशों में गिना जाता है। इस देश में 'नामकरण' भी एक संस्कार है, जिसके विषय में धर्मशास्त्रों में विशिष्ट विधियों का वर्णन है। चरक-संहिता, शारीरस्थान (अध्याय ८) में बालक का नाम नक्षत्र या देवता के नाम पर या जन्मनक्षत्र के देवता के नाम पर अथवा प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित तथा तीन पीढ़ी के पूर्वजों के नामाक्षरयुक्त दो या चार अक्षरों वाला छोटा नाम रखने का निर्देश किया गया है।

कालक्रम से किसी विशेष गुण के आधार पर अथवा व्यक्ति के किसी विशेष गुण के आधार पर नाम रखने की प्रथा प्रचलित हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि 'धन्व-

न्तरि' नाम भी विशिष्ट गुणबोधक एवं अन्वर्थक नाम है। 'सुश्रुत' के टीकाकार डल्हण ने धन्वन्तरि शब्द की व्युत्पत्ति निम्नलिखित रूप में की है—

'धनुः शल्यशास्त्रं तस्य अन्तं पारम् इयर्ति गच्छतीति धन्वन्तरिः।'

(सु० सू० १।३)

अर्थात् शल्यशास्त्र के पारंगत विद्वान् को धन्वन्तरि कहते हैं।

वैद्यकशास्त्र के जन्मदाता के रूप में धन्वन्तरि का नाम जनसाधारण में प्रचलित है। यह कार्य अन्वेषकों का है कि वे उस धन्वन्तरि की खोज करें, जो चिकित्सा-परम्परा के आद्यप्रवर्तक हैं। अस्तु, आयुर्वेद में जिस धन्वन्तरि का शल्य एवं चिकित्साशास्त्र के निष्णात आचार्य तथा उपदेष्टा के रूप में वर्णन है, वह है— 'दिवोदास काशिराज धन्वन्तरि', जिन्होंने सुश्रुत आदि को शल्य-प्रधान आयुर्वेद का उपदेश किया और उन उपदेशों का संग्रह कर सुश्रुत ने 'सुश्रुतसंहिता' की रचना की। सुश्रुत के सहपाठी औपधेनव आदि ने भी अलग-अलग संहिताएँ बनाई।

विचारणीय बात यह है कि दिवोदास के पूर्वजों में इनके प्रपितामह का नाम भी धन्वन्तरि था। भारतवर्ष में अपने पूर्वजों के नाम पर नाम रक्खे जाने की परम्परा देखी जाती है। कहीं गोत्र के नाम पर, कहीं गुणवाचक शब्दों के नाम पर, कहीं किन्हीं उपाधिवाचक शब्दों के नाम पर। 'धन्वन्तरि' भी उपाधिबोधक शब्द प्रतीत होता है।

धन्वन्तरि नाम से तीन आचार्य मिलते हैं, जिनका पृथक्-पृथक् परिचय अग्रिम पंक्तियों में दिया जा रहा है—

धन्वन्तरि (प्रथम)—काश्यपसंहिता (रेवतीकल्प-६) में यह उल्लेख मिलता है कि 'काल के द्वारा भक्षण किये जाते हुए देवता और असुर प्रजापति (ब्रह्मा) की शरण में पहुँचे। प्रजापति ने इनके लिए अमृत का उपदेश किया। उन्होंने समुद्र-मन्थन किया तथा अमृत प्राप्त किया। फिर प्रश्न उठा कि कौन पहले इसका सेवन करे? तब देवताओं ने ही इसका सेवन किया और वे अजर-अमर हो गये। देवताओं ने अमृतपान कर क्षुधा और काल को पराजित कर दिया।'

पुराणों में भी क्षीरसागर के मन्थन से अमृतकलश लिये हुए धन्वन्तरि के प्रकट होने की कथा वर्णित है। धन्वन्तरि समुद्र से निकले हुए चौदह रत्नों में गिने जाते हैं—

'श्री, माण, रम्भा, वारुणी, अमिय, शंख, गजराज।
कल्पद्रुम, शशिधेनु, धेनु, धनु धन्वतरि, विष, वाजि॥'

श्रीनन्दूलाल दे ने मध्य एशिया के 'वंक्षु' (ओक्सस-Oxus) नदी की पश्चिम दिशा में वर्त्तमान कैस्पियन (Capian) समुद्र को ही 'क्षीरसागर' माना है। क्षीरसागर के चारों ओर पर्वत थे, उन पर्वतों पर सभी प्रकार की औषधियाँ थीं। यह स्थान मनुष्य, देवता और असुरों का निवासस्थान था।

देवता और असुर समुद्रमन्थन का निश्चय करके वासुकि (नाग) को नेति (रज्जु) और मन्दराचल को मथानी बनाकर पूर्ण शक्ति लगाकर समुद्रमन्थन किये। तत्पश्चात् धर्मात्मा आयुर्वेदमय पुरुष दण्ड और कमण्डल के साथ प्रकट हुआ। मन्थन के पूर्व समुद्र में विविध प्रकार की औषधियाँ डाली गयी थी और मन्थन से उनके संयुक्त रसों का स्राव अमृत के रूप में निकला। फिर अमृतयुक्त श्वेत कमण्डल धारण किये धन्वन्तरि प्रकट हुए।[1]

इस प्रकार धन्वन्तरि (प्रथम) का जन्म अमृतोत्पत्ति के समय हुआ। वायु-पुराण और हरिवंशपुराण में भी समुद्रमन्थन से धन्वन्तरि के प्रादुर्भाव का वृत्तान्त वर्णित है। इनका काल समुद्रमन्थन काल है।

धन्वतरि के गुरु—धन्वन्तरि ने चिकित्सा-विषयक ज्ञान भास्कर से प्राप्त किया। मत्स्यपुराण (२५१।४) के अनुसार अमृतमन्थन के साथ उपलब्ध रत्नों में-से धन्वन्तरि को भास्कर ने ग्रहण किया।

'गजेन्द्रं च सहस्राक्षो हयरत्नं च भास्करः।
धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् ॥'

---

१. ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम्।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः॥
अथ वर्षसहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान्।
उदतिष्ठत् सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः॥
(वाल्मीकि रामा० बा० का० ४।१८-२०)

ततो नानाविधास्तत्र सुश्रुवुः सागराम्भसि।
महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधिरसाः॥
तेषाममृतवीर्याणां रसानां पयसैव च।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनस्य च निःस्रवात्॥
धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत।
श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति॥
(महाभारत, आदिपर्व अ० १८)

इस कथन से भास्कर धन्वन्तरि के गुरु प्रतीत होते हैं। सुश्रुत आदि ग्रन्थों में धन्वन्तरि के लिए आदिदेव, अमरवर, अमृतयोनि, अब्ज आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है।

ग्रन्थ—धन्वन्तरि के गुरु भास्कर ने भास्करसंहिता की रचना की थी। उस संहिता का अध्ययन कर भास्कर के शिष्यों ने अपनी संहिताएँ बनायी। धन्वन्तरि ने भी भास्करसंहिता के आधार पर 'चिकित्सातत्त्वविज्ञानतन्त्र' की रचना की थी।

'चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम्।
धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति॥'
(ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखण्ड अ० १६)

यह धन्वन्तरि विष्णु के रूप में माने जाते हैं। अतएव इनकी चतुर्भुज मूर्ति का विशेष प्रचलन है। किन्तु इसका कहीं स्पष्टतः उल्लेख न होने से मनुष्य रूप में द्विभुज मूर्ति की कल्पना करना भी स्वाभाविक प्रतीत होता है।

समुद्रमन्थन एक युक्ति[1]—आयुर्वेदीय दृष्टि से विचार करने पर समुद्रमन्थन 'युक्ति' का उदाहरण है और धन्वन्तरि का आविर्भाव रोगशोक-विमुक्ति-जनक दैवी शक्ति का विस्फार है। अर्थात् पंचमहाभूत और आत्मा के संयोग से गर्भोत्पत्ति, जल-कर्षण, बीज और ऋतु की अनुकूलता से शस्योत्पत्ति एवं मथ्य, मन्थन, मन्थान के संयोग से अग्नि की उत्पत्ति के समान ही जब औषध, रोगी, परिचारक और वैद्य अपने गुणों से समन्वित होते हैं, तब रोग का निर्मूलन होता है। चिकित्साशास्त्र युक्ति (योजना) पर निर्भर है। 'धन्वन्तरि' आयुर्वेदरत्नाकर के सर्वोत्कृष्ट प्रथम रत्न हैं। मन्थन का सन्देश लेकर इनका अवतार हुआ है। सतत गतिशीलता अं॰ सुनियोजन से लक्ष्यप्राप्ति-पर्यन्त प्रयत्न के देवता आद्य धन्वन्तरि हैं, जिन्होंने आयुर्वेद के प्रथमाङ्ग शल्यतन्त्र में पारङ्गत ज्ञान उपार्जित किया था।

अतः अमृतकलश लिये हुए समुद्रमन्थन से उद्भूत धन्वन्तरि को हम लोग प्रथम धन्वन्तरि मानते हैं, जिसके सम्बन्ध में पूर्व में विचार किया जा चुका है।

धन्वन्तरि (द्वितीय)—धन्वन्तरि (द्वितीय) से हमलोगों का तात्पर्य उस धन्वन्तरि से हैं, जिन्होंने काशी के चन्द्रवंशी राजकुल में सुनहोत्र की वंशावलि में चौथी या पाँचवी पीढ़ी में जन्म ग्रहण किया था। हरिवंश तथा अन्य पुराणों के अनुसार उसका वंश-वृक्ष अधोलिखित है—

---

१. बुद्धिः पश्यति या भावान् बहुकारणयोगजान्।
युक्तिस्त्रिकाला सा ज्ञेया त्रिवर्गः साध्यते यया॥ (च० सू० ११।२५)

सुहोत्र[1]	सुनहोत्र[2]	सुनहोत्र[3]	सुनहोत्र[4]
काशिक	काश	काश	प्रकाशिराट्
दीर्घतपा	दीर्घतपा	दीर्घतपा	
धन्वन्तरि (द्वितीय)	धन्व	धन्वन्तरि	धन्वन्तरि
केतुमान	धन्वन्तरि	केतुमान	केतुमान
भीमरथ		भीमरथ	भीमरथ-दिवोदास
दिवोदास धन्वन्तरि (तृतीय)		दिवोदास	
प्रतर्दन		प्रतर्दन	प्रतर्दन

इस वंशावलि में थोड़ा-सा भेद है, किसी ने दीर्घतपा के पुत्र को धन्व और धन्व के पुत्र को धन्वन्तरि माना है, तो किसी ने धन्वन्तरि को सीधे दीर्घतपा का पुत्र माना है।

भागवतपुराण (स्कन्ध ९ अ० १७) और गरुड़पुराण में दीर्घतपा का पुत्र धन्वन्तरि आयुर्वेद-प्रवर्तक माना गया है।

काल—दाशरथि राम त्रेता-द्वापर की सन्धि में हुए। काशीपति प्रतर्दन उनका मित्र था। रामाभिषेक में प्रतर्दन उपस्थित था। (रामा० उ० ३८।१५)। त्रेता-द्वापर का सन्धिकाल ३०० वर्ष का था। अतः प्रतर्दन से चार पीढ़ी ऊपर (त्रेता के अन्त में) विक्रम से लगभग ५०४४ वर्ष पूर्व धन्वन्तरि द्वितीय का काल था।

इस धन्वन्तरि के लिए विद्वान् (हरिवंश १।२९) विशेषण लगाया गया है। इसे सर्वरोगप्रणाशन (सभी रोगों को नष्ट करने वाला) और आयुर्वेद-प्रवर्तक (भागवतपुराण) कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह चिकित्सा-निपुण सिद्धहस्त वैद्य और विविध विद्याओं के ज्ञाता है। संभव है कि शल्यशास्त्र में पारङ्गत विद्वान् होने के कारण ही इनका नाम धन्वन्तरि रखा गया हो।

धन्वन्तरि (तृतीय) काशिराज दिवोदास—शल्यप्रधान आयुर्वेद-परम्परा के जनक के रूप में इनका नाम लिया जाता है। धान्वन्तर-सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा इनकी

---

१. हरिवंश १।३२।१८—२२, २८।

२. हरिवंश १।२९।५-१०।

३. ब्रह्माण्डपुराण २।६६।३।

४. वायु पुराण ९२।१८।

क्रियाकुशलता का ही परिणाम है। यह शल्यकर्म-विशेषज्ञ आचार्य के रूप में चिकित्सा-जगत् में विख्यात है।

दिवोदास वाराणसी नगर के संस्थापक थे। काशिराज के कुल में आयुर्वेद की परम्परा अक्षुण्ण रही है और प्रत्येक काल में उसका प्रचार-प्रसार किया जाता रहा है। दिवोदास ने उस परम्परा को समृद्ध बनाया। अपने यहाँ विद्यापीठ के रूप में आयुर्वेद की शिक्षा-दीक्षा देना प्रारम्भ किया। उनके यहाँ दूरस्थ देशों के शिष्य विद्याध्ययन के निमित्त आते थे। दिवोदास के शिष्यों में सुश्रुत के अतिरिक्त औपधेनव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य और गोपुररक्षित का नाम दिया गया है—

'अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनववैतरणौरभ्रपौष्कलावतकरवीर्यगोपुररक्षितसुश्रुतप्रभृतय ऊचुः।'

(सु० सू० १।३)

यहाँ प्रभृति शब्द से टीकाकार डल्हण ने निमि, कांकायन, गार्ग्य और गालव का ग्रहण किया है। इन शिष्यों के नाम वाराणसी के आसपास के प्रचलित नामों से भिन्न हैं। इसलिए ये छात्र दूर देशों से पढ़ने के लिए आये होंगे। धन्वन्तरि को सुश्रुत-संहिता (चि० २।३) में धर्माचरणयुक्त वाग्विशारद; निदानस्थान (१।३) में राजर्षि; कल्पस्थान (४।३) में महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद एवं उत्तरतन्त्र (१८।३) में तपोदृष्टि उदार थी तथा मुनि कहा गया है।

इन विशेषणों से यह सिद्ध होता है कि दिवोदास धन्वन्तरि परमतपस्वी, शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान्, धर्मात्मा और उदार मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। सुश्रुत, उत्तरतन्त्र (६६।३) में दिवोदास धन्वन्तरि के कुछ विशिष्ट विशेषण दिये गये हैं। इन्हें अष्टांग आयुर्वेद का विद्वान्, महा ओजस्वी, शास्त्रों के अर्थ-विषयक संदेह को दूर करने वाला तथा अनेक सूक्ष्म शास्त्रों के ज्ञाता के रूप में कहा गया है—

'अष्टाङ्गवेदविद्वांसं दिवोदासं महौजसम्।
छिन्नशास्त्रार्थसन्देहं सूक्ष्मागाधागमोदधिम्॥'

यह पूर्व में देववैद्य थे और इन्होंने देवताओं की जरा, रुजा और मृत्यु को दूर कर, उन्हें अजर, अमर तथा नीरोग किया। मर्त्यलोक में शल्यप्रधान आयुर्वेद के लिए इनका मानव रूप में अवतरण हुआ। जैसा कि वे स्वयं अपना परिचय देते हुए पाये जाते हैं—

'अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्॥'

(सु० सू० १।१७)

काल—चरकसंहिता में अनेक स्थलों पर धन्वन्तरि का मत उद्धृत किया गया है तथा शल्यप्रधान रोगों की चिकित्सा में (च० चि० ५।६३) शल्यज्ञ धान्वन्तर-सम्प्रदाय के लोगों का सम्मान के साथ अधिकार बतलाया गया है। इसके ठीक विपरीत बात यह है कि सुश्रुतसंहिता में आत्रेय का कोई उल्लेख नहीं है। इससे प्रकट होता है कि दिवोदास, आत्रेय एवं अग्निवेश से कुछ समय पूर्व के थे। अग्निवेश का काल १००० ईस्वी पूर्व माना जाता है। अतः दिवोदास का काल १००० से १५०० ईस्वी पूर्व माना जाना चाहिए।

गुरु—इन्होंने स्वयं कहा है कि मैंने इन्द्र से आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की और मैं प्रजा के कल्याण के लिए शिष्यों को विद्यादान करूँगा—'इन्द्रादहं, मया त्विह प्रदेयमार्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः'। (सु० सू० १।२०)

दिवोदास धन्वन्तरि ने आयुर्वेद का शास्त्रीय तथा क्रियात्मक ज्ञान भारद्वाज से प्राप्त किया। जैसा कि 'हरिवंश' (पर्व १ अध्याय २९) में लिखा है—

'आयुर्वेदं भारद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥'

ग्रन्थ—इन्होंने चिकित्सादर्शन और चिकित्साकौमुदी की रचना की, जिसका उल्लेख ब्रह्मवैवर्त, खण्ड अ० १६ में है। अन्य ग्रन्थों में—योगचिन्तामणि, सन्निपातकलिका, धातुकल्प, अजीर्णामृतमञ्जरी, धन्वन्तरिनिघण्टु, रोगनिदान, वैद्यचिन्तामणि, वैद्यकभास्करोदय, चिकित्सासारसंग्रह आदि का नाम प्रमुख है।

पूना की हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची सं ३६० में धन्वन्तरि-लिखित ग्रन्थों का उल्लेख है।

प्राचीनता—धन्वन्तरि का महाभारत, हरिवंशपुराण एवं वायुपुराण आदि में; मिलिन्दपन्हो नामक पालीग्रन्थ तथा अयोघर नामक जातकग्रन्थ में; भीमसेन या भीमरथ के पुत्र दिवोदास का हरिवंश, महाभारत तथा काठकसंहिता में; प्रतर्दन के पिता के रूप में दिवोदास का कौषितकी ब्राह्मण, कौषितकी उपनिषद्, कात्यायनीय-ऋक्सर्वानुक्रम तथा महाभाष्य में निर्देश होने से और दिवोदास द्वारा स्थापित वाराणसी का महावग्ग आदि में उल्लेख मिलने से यह उपनिषत्कालीन आचार्य प्रतीत होते हैं।

डोरोथिया च्यापलिन ने धन्वन्तरि का समय हिपोक्रेटिस के समय से १२०० वर्ष पूर्व माना है। अक्षयकुमार मजूमदार ने धन्वन्तरि का समय ईस्वी पूर्व १६००, भीमरथ के पुत्र दिवोदास का ई० पू० १५०० वर्ष समय माना है।

रामायण एवं महाभारत के युद्धों में घायल व्यक्तियों की शल्यचिकित्सा एवं बाण आदि चुभने पर उनके उद्धरण की आवश्यकता होती थी और उसके लिए शल्य-

कर्म किया जाता था। शल्यकर्म अति प्राचीनकाल से चला आ रहा है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में भी भग्नसन्धान के अनेक उद्धरण प्राप्त होने से धन्वन्तर-सम्प्रदाय की प्राचीनता निर्विवाद रूप से मान्य है। एवञ्च धन्वन्तरि दिवोदास आदि का पुराणों में वर्णन उपलब्ध होने से उनकी प्राचीनता स्वयमेव स्पष्ट है।

काश्यप आदि उपनिषत्कालीन—काश्यप, आत्रेय, भारद्वाज और भेल आदि भी उपनिषत्काल के समीप के ही है। विद्वानों ने ईस्वी पूर्व एक हजार से दो हजार वर्ष तक के समय को उपनिषत्काल माना है।

मारीच कश्यप का महाभारत, ऋक्सर्वानुक्रम बृहद्देवता तथा अथर्वसर्वानुक्रम में निर्देश दिया गया है। भेल का आत्रेय के शिष्य तथा गान्धार के नग्नजित् के साथी के रूप में वर्णन है। आत्रेय का मारीच कश्यप द्वारा, वाक्योद्धारसहित आचार्य रूप में भेल द्वारा तथा कृष्णात्रेय नाम से महाभारत में निर्देश होने से तथा भारद्वाज का भी महाभारत में निर्देश होने से भारद्वाज, धन्वन्तरि, दिवोदास, आत्रेय, मारीचि, कश्यप आदि आचार्य परस्पर निकटवर्ती काल के एवं उपनिषत् काल के प्रतीत होते हैं। एवञ्च इन सबकी प्राचीनता असन्दिग्ध है।

पौष्कलावत, करवीर्य, औरभ्र आदि आचार्य

(१) **पौष्कलावत**—सुश्रुतसंहिता-सूत्रस्थान, अध्याय एक में यह प्रसङ्ग आया है कि ऋषिगणों से परिवेष्टित अपने आश्रम में विराजमान काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि से औपधेनव, वैतरण, औरभ्र और पौष्कलावत आदि ऋषियों ने आयुर्वेद के अध्ययनार्थ अपनी इच्छा व्यक्त की।

इस सन्दर्भ में सुश्रुत के साथ अध्ययनार्थी छः शिष्यों में 'पौष्कलावत' का नाम अन्यतम है। इस प्रकार पौष्कलावत के गुरु धन्वन्तरि थे। यह सुश्रुत के सहाध्यायी थे, अतः सुश्रुत के समकालीन थे।

पौष्कलावत शब्द तद्धितान्त है, तदनुसार इनके मूलपुरुष का नाम पुष्कलावत था। 'चिकित्साकलिका' विवृति पृष्ठ ११७ के एक वचन में पुष्कलावत को शल्यतन्त्र-कार कहा गया है। तत्त्वचन्द्रिका, आयुर्वेददीपिका तथा अष्टाङ्गसंग्रह में भी पुष्कलावत के नाम से कुछ वचन उद्धृत हैं।

पौष्कलावत तन्त्र का एक सन्दर्भ चक्रपाणि ने सुश्रुत (सूत्र० १४) की भानुमती टीका में उद्धृत किया है—

'पुष्कलावतेऽप्युक्तम्—आहारस्य यत् परं धाम तदग्निना रञ्जितं रक्तत्वं प्रतिपद्यते—तत् सौम्याग्नेयत्वादुष्णद्रवैश्चाभिवर्द्धते इति।

पुष्कलावत का एक वचन अष्टाङ्गसंग्रह, उत्तर० पृ० २१८ पर उद्धृत है—

'पुष्कलावतस्तु पठति'

इसकी टीका में टीकाकार इन्दु ने लिखा है कि 'पुष्कलावतनामा ऋषिस्तु पठति—

तमसा पिहितो ह्यूष्मा रोमकूपैरनावृतैः ।
लेपाद्विनैव निर्याति रात्रौ नालेपयेदतः ॥'

इस वचन के अतिरिक्त 'आयुर्वेददीपिका' में लिखे तीन सन्दर्भों को गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने 'हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन' के भाग ३, पृष्ठ ६०४ पर उद्धृत किया है—

'यदुक्तं पुष्कलावते—

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ।
मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमत उत्तरम् ॥

तथा हि पुष्कलावतः—

ग्रीवावङ्क्षणजङ्घौष्ठपादकर्णकराश्रयम् ।
श्लीपदं मांसमेदोभ्यां विद्यादिति.... ॥

उक्तं हि पुष्कलावते—

न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि ।
समीकरोति विषमान् तत् संशमनमुच्यते ॥'

इन उद्धरणों के मिलने से यह सिद्ध होता है कि चक्रपाणि के समय में पुष्कलावततन्त्र उपलब्ध था और पुष्कलावत ने किसी तन्त्र (संहिता-ग्रन्थ) की रचना की थी ।

नाम—प्रायः देखा जाता है कि प्राचीन आचार्यों के नाम रखने का आधार कुल, माता, पिता, गुरु, देश अथवा उस व्यक्ति का कोई विशिष्ट गुण रहा है । इसलिए पौष्कलावत आदि नाम भी किसी देश या व्यक्ति-विशेष के अनुसार 'तत्र जातः' (अष्टाध्यायी ४।३।२५) सूत्र से अण् आदि प्रत्यय लगाकर बनाये हुए प्रतीत होते हैं । पं० हेमराज शर्मा ने लिखा है कि पुष्कलावत नाम का कोई भी व्यक्ति भारतीय इतिहास में नहीं मिलता है, किन्तु यह शब्द देश-विशेष के अर्थ में मिलता है । इसलिए 'पुष्कलावत नामक देश में होने वाले' इस अर्थ में देश-विशेष के नाम पर यह नाम रक्खा गया प्रतीत होता है ।

'विष्णुपुराण'[1] के लेख के अनुसार 'पौष्कलावत' देश भरत के पुत्र पुष्कल द्वारा स्थापित देश है । 'वाल्मीकि रामायण'[2] में भी इसका उल्लेख मिलता है ।

---

१. विष्णुपुराण, यच० यच० विल्सन द्वारा अनूदित भाग ३, पृष्ठ ३१९ ।
२. रामायण, उत्तरकाण्ड पाठ १०१, ११४ पृष्ठ ४७६ । (जे० ए० एस० बी० १८४०)

वेदों में आये हुए 'आसन्दीवत्, पस्त्यावत्, शर्यणावत्' इत्यादि तथा महाभारत के 'वारणावत्' आदि नामों के सदृश होने से यह पौष्कलावत भी भारत के पश्चिमी भाग में स्थित कोई प्राचीन देश प्रतीत होता है।

यह गान्धार राज्य की प्राचीन राजधानी थी। अलेग्जेन्डर के आने के समय भी 'गान्धार' में इस नगरी की प्रधानता थी। यह ग्रीक लोगों की परिचित नगरी थी, एरियन-स्ट्रैबो तथा टालेमी आदि अनेक ग्रीक विद्वानों ने पौष्कलावत का सिन्धु के समीपस्थ महानगरी के रूप में उल्लेख किया है।[1]

यह पौष्कलावत नामक आचार्य उसी नगर के प्रतीत होते हैं। सुश्रुत ने शल्यतन्त्रकर्ताओं के नाम के साथ इनके नाम का उल्लेख किया है,[2] इससे यह सिद्ध होता है कि उस प्राचीनकाल में गान्धार देश के विद्वान् भी शल्यतन्त्र में निपुण होते थे।

(२) **करवीर्य**—यह काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि के शिष्य थे। सुश्रुत के सहाध्यायी और समकालीन थे। यह करवीर्यतन्त्र के रचयिता थे, यह ग्रन्थ शल्यतन्त्र-विषयक था।

सुश्रुतसंहिता (सूत्रस्थान ४।८) में औपधेनव, औरभ्र, सौश्रुत तथा पौष्कलावत के तन्त्रों को शल्यतन्त्रों का आधार बतलाया गया है ('शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत्')। यहाँ डल्हण 'शेषाणाम्' की टीका में लिखता है—

शेषाणां—गोपुररक्षितप्रभृतिप्रणीतशल्यतन्त्राणाम्।

अर्थात् शेष करवीर्य तथा गोपुररक्षित आदि द्वारा बनाये हुए शल्यतन्त्रों के मूल आधार सुश्रुत आदि के शल्यतन्त्र थे। इस उक्ति से करवीर्य शल्यतन्त्रकार सिद्ध होते हैं।

'माधवनिदान' के अतिसारनिदान में मधुकोष टीका में विजयरक्षित ने करवीर्य के एक श्लोक को उद्धृत किया है—

'चन्द्रकैः शिखिपिच्छाभैर्लीनपीतादिराजिभिः।
आवृतं वेशवाराम्बुमज्जक्षीरोपमं त्यजेत्॥'

इससे भी करवीर्यतन्त्र का अस्तित्व सिद्ध होता है।

---

१. 'पुष्कलावती एक विशाल नगर है, जो सिन्धु के निकट है।'
(मेगस्थनीज एण्ड एरियन, पृष्ठ १८४)

२. औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम्।
शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत्॥ (सु० सू० ४।८)

नाम—करवीर्य शब्द का अर्थ है—'करवीर देश में होने वाला'। इससे यह करवीर के रहने वाले प्रतीत होते हैं। दृषद्वती नदी के किनारे पर 'करवीरपुर' के होने का उल्लेख मिलता है[1]। कालिकापुराण में भी करवीरपुर का उल्लेख है।

जिसके हाथ में वीर्य (बल या सिद्धि) हो, ऐसे सिद्धहस्त क्रियाकुशल, अभ्यासी, शल्य-चिकित्सक के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त हो सकता है। सम्भव है कि शल्यकर्म में हस्तलाघव गुण होने के कारण इनका नाम 'करवीर्य' पड़ गया हो ('करे=हस्ते वीर्यं=शक्तिर्नैपुण्यं वा यस्य असौ करवीर्यः')।

(३) **औरभ्र**—दिवोदास धन्वन्तरि के शिष्यों में औरभ्र का नाम सुश्रुत के साथ ही आता है। यह सुश्रुत के सहपाठी और समकालीन थे। मूल शब्द 'उरभ्र' से तद्धितान्त प्रत्यय लगने पर 'औरभ्र' शब्द बनता है। सुश्रुतसंहिता (सूत्र० ४।८) में औरभ्र शब्द तन्त्रवाचक है और प्रधान चार तन्त्रों में औरभ्रतन्त्र की गणना की गई है।

गणनाथसेन ने 'प्रत्यक्षशारीरम्' के उपोद्घात में औरभ्रतन्त्र को नाममात्रावशेष कहा है। गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने भी इस तन्त्र को अप्राप्य बतलाया है और इनका कोई उद्धरण नहीं लिखा है, किन्तु 'सूरमचन्द्र' ने लिखा है कि अष्टाङ्गसंग्रह, उत्तरस्थान पृष्ठ २६९ पर इन्दु टीका में उरभ्र के नाम से १० श्लोक उद्धृत हैं।

नाम—यह नाम किसी देश या व्यक्ति के नाम (उरभ्र) से बना है। उरभ्र का पुत्र ('उरभ्रस्यापत्यम्'), अथवा उरभ्र देश में उत्पन्न ('उरभ्रे भवः') हुआ व्यक्ति औरभ्र कहा जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में उरभ्र नाम के किसी देश या व्यक्ति का उल्लेख प्राप्त नहीं होने से यह समस्या है कि इस औरभ्र का परिचय कैसे प्राप्त किया जाय?

वेद में उरभ्र और उरण शब्दों का प्रयोग भेड़ के अर्थ में है। वेद में सिन्ध में बहनेवाली ऊर्णावती नदी का उल्लेख मिलता है। गान्धार तथा उसके उत्तर के देशों में प्राचीनकाल से ही भेड़ों की अधिकता होने का वर्णन मिलता है। संभव है कि उरण के प्राचुर्य के कारण उस प्रदेश की नदी का नाम ऊर्णावती रख दिया गया हो (आज भी देखा जाता है कि भेड़ और बकरियों के चरागाह की भूमि और उनकी संख्या की अधिकता के कारण वहाँ के गावों का नाम 'भेंड़ी' और 'बकरुआ' रख दिया गया है)।

यह भी संभावना व्यक्त की जा सकती है कि 'उरभ्र' का 'उर' से या उरण से सम्बन्ध रहा हो। ऋग्वेद के एक मन्त्र (२।१४।४) में यह उल्लेख है कि इन्द्र ने उरण नामक असुर को मारा ('अध्वर्यवो य उरणं जघान')। बेबीलोन देश के प्राचीन

1. Sanskrit Wortlbuch Vol I. p. 112 by O. Bohtlingk and R. Roth।

नगरों में 'उर' नाम का एक नगर था। धार्मिकता तथा वाङ्मय की दृष्टि से यह नगर प्रधान था। 'उर' नगर में उरनम्मु[1] (ईस्वीपूर्व २३००-२२००) तथा वंसिन राजाओं के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। 'असीरिया' की पूर्वनिवासी जातियाँ असुर के रूप में थीं। इन्द्र द्वारा मारा गया 'उरण' नामक असुर संभवतः असीरिया का था।

'उरभ्र' शब्द और 'उर' शब्द में परस्पर साम्य के आधार पर उरभ्र 'उर' देश से सम्बद्ध प्रतीत होता है। ए० सी० दास ने 'ऋग्वेदिक इण्डिया' में लिखा है कि 'उर' देश में शालवृक्ष की लकड़ियाँ प्राप्त हुई है। संभव है कि 'उर' देश से 'उरभ्र' का सम्बन्ध रहा हो। जैसे 'चरक' में बाह्लीक-भिषक् कांकायन का भारतीय ऋषियों की गोष्ठियों में सम्मिलित होने का उल्लेख पाया जाता है, वैसे ही सम्भव है कि 'उर' देश के लोग भी भारतीय विद्या से प्रभावित होकर यहाँ आकर शास्त्राध्ययन तथा शास्त्र-निर्माण भी करते रहे हों और उन्हीं में 'औरभ्र' भी अन्यतम आचार्य रहे हों।

(४) **गोपुररक्षित**—सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान (१।३) की निबन्धसंग्रह व्याख्या में आचार्य डल्हण ने लिखा है कि कुछ आचार्य गोपुर और रक्षित दो अलग शब्द मानकर गोपुररक्षित से दो आचार्यों को मानते हैं—'अन्ये तु गोपुररक्षितौ इति नामद्वयं मन्यन्ते' किन्तु 'तत्त्वचन्द्रिका' में गोपुररक्षित शब्द का एकवचन में प्रयोग हुआ है—'यदाह गोपुररक्षितः।' यदि ये दो नाम होते, तो द्विवचन (गोपुररक्षितौ) का प्रयोग होता ? अतः असन्दिग्ध रूप से यह एक व्यक्ति का नाम है।

समय—यह सुश्रुत के साथ ही शिक्षा ग्रहण किये थे और सुश्रुत के समकालीन थे।

गुरु—इनके गुरु या आचार्य धन्वन्तरि काशिराज दिवोदास थे।

शास्त्ररचना—इन्होंने (गोपुररक्षित) शल्यतन्त्र ग्रन्थ की रचना की थी। 'तत्त्वचन्द्रिका' में इनके नाम के दो श्लोक उद्धृत हैं—

यदाह गोपुररक्षितः—

'रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत्।
शुष्कद्रवाद्रयोश्चापि तुल्यं मानं प्रकीर्तितम्॥
द्विगुणं कुडवादौ तु शुष्कान्मानं द्रवस्य च।
आर्द्रस्य चाल्पवीर्यत्वाज्ज्ञेयमन्यत्र तत्समम्॥'

(ज्वराधिकार, दशमूल शतपलक घृत)

स्थान—दक्षिण भारत के शिल्पग्रन्थों में गोपुर का निर्देश होने से तथा वर्त्तमान समय में भी दाक्षिणात्य देशों में 'गोपुर' की विशेष प्रसिद्धि होने से गोपुर नामधारी आचार्य संभवतः दाक्षिणात्य रहे हों, किन्तु रामायण, महाभारत आदि में भी पुरद्वार के अर्थ में गोपुर शब्द का प्रयोग मिलता है, इसलिए मात्र इस आधार

---

1. Babilonian Life and History p. 221-23. by E. A. Wallis Budge।

पर देश का निर्धारण करना उचित नहीं प्रतीत होता है एवं इनके स्थान के विषय में कोई निश्चित मत नहीं है।

(५) **औपधेनव**—यह सुश्रुत के साथ ही धन्वन्तरि दिवोदास से शिक्षा ग्रहण किये थे, इन्होंने शल्यप्रधान अष्टांग आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था।

नाम—उपधेनु शब्द से तद्धितान्त प्रत्यय लगने पर 'उपधेनोरपत्यं पुमान् औपधेनवः' यह शब्द बना है। औपधेनव नाम के आचार्य का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। 'उपगोरपत्यमौपगवः' पाणिनीय सूत्र 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) के इस उदाहरण में महाभाष्यकार ने उपगु के अपत्य (पुत्र) के रूप में औपगव का निर्देश किया है। 'विष्णुपुराण' में मिथिला के राजा सीरध्वज के भाई काशिराज कुशध्वज के वंश में किसी 'उपगु' का निर्देश मिलता है। वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न एक ऋषि भी उपगु नाम से मिलते हैं। औरव कौत्स राजा के पुरोहित सौश्रवस् के पंचविंशब्राह्मण (१४। ६।८) में उपगु का वर्णन मिलता है। महाभाष्य (४।१।३।९०) के 'औपगवेर्यू-नश्छात्रा औपगवीयाः' इस निर्देश से औपगव छात्र-सम्प्रदाय के प्रवर्तक प्रतीत होते हैं। यह प्रसिद्ध औपगव ही संभवतः औपधेनव हो, क्योंकि पर्यायवाची शब्दों द्वारा व्यवहार करने की पद्धति भी मिलती है।

फिर भी यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि शल्यतन्त्रकर्ता औपधेनव कौन था और यह कहाँ का निवासी था ?

शास्त्र-रचना—सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान (४।९) में औपधेनव-शल्यतन्त्र का उल्लेख है—

'पुष्कलावतम्। शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं निर्दिशेत।'

इससे यह सिद्ध होता है कि 'औपधेनव' अपने समय में शल्यतन्त्र का प्रधान ग्रन्थ था, जो अब उपलब्ध नहीं है। औपधेनवतन्त्र के किसी उद्धरण का उल्लेख नहीं मिलता। इस प्रकार यह तन्त्र भी सम्प्रति नाममात्रावशिष्ट है।

(६) **वैतरण**—यह काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि के शिष्य तथा सुश्रुत के सह अध्येता थे। यह शल्यशास्त्री और सर्जन थे।

वैतरण का शल्यतन्त्र सुविख्यात नहीं था, फिर भी उसके कई उद्धरण प्राप्त होते हैं। गणनाथसेन ने 'प्रत्यक्षशारीरम्' के उपोद्घात में लिखा है कि टीकाकारों ने व्रण-बन्ध प्रकार तथा विशिष्ट शास्त्रकर्म की विधियाँ, जो सुश्रुत में नहीं हैं, उन्हें वैतरण-तन्त्र से उद्धृत किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि वैतरणतन्त्र सुश्रुतसंहिता से भी बड़ा ग्रन्थ रहा होगा।

वैतरणतन्त्र के निम्नलिखित तीन वचनों को निबन्धसंग्रह, तत्त्वचन्द्रिका और चक्रदत्त में उद्धृत किया गया है, जिन्हें गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने उद्धृत किया है—

(हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, पृ० ६०७)

'तथा च वैतरणः—

भगस्याधः स्त्रिया वस्तिरूर्ध्वं गर्भाशयाश्रिता ।
गर्भाशयश्च वस्तिश्च महास्रोतः समाश्रितौ ॥
वस्तिभागं समुन्नम्य अवनम्याश्मरी बुधः ।
स्फिगग्रे भेदने तासां हितमन्यत्र दोषकृत् ॥'

(सु० चि० ७।३६ पर डल्हण-टीका)

'उक्तञ्च वैतरणे—

सर्वंशस्तु निशां प्राप्य लेपनन्तु निवर्तयेत् ।
क्षीरसर्पिः प्रलेपन्तु हित्वा प्रच्छादनं तथा ॥' (तत्त्वचन्द्रिका)

'अथ वैतरणवस्तिः—

पलशुक्तिकर्षकुडवैरम्लीगुडसिन्धुजन्मगोमूत्रैः ।
तैलयुतोऽयं वस्तिः शूलानाहामवातहरः ॥
वैतरणः क्षारवस्तिर्भुक्ते चापि प्रदीयते ॥'